THE TIMES OF INDIA

Date: 13-08-26

Stitch In Time

Gen Z is learning to sew and repair. It's part of their search for quiet in a digital maelstrom

TOI Editorials

Seam and gusset and band, stitch, stitch, stitch, in poverty, hunger, dirt...a shroud as well as a shirt. So went a Victorian poem on the monotonous misery of seamstresses toiling for starvation wages. Many societies have only known stitching as grueling, gendered labour. Millions of workers still sew and embroider for minimal piece-rate wages. Now, though, the same work is also showing up in a cozy and therapeutic avatar. Tweens, teenagers, older Gen Zs are taking to it in such numbers that Big Fashion has set up in-store workshops to woo them. It befits our postmodern world, that our consumption and sustainability drives both wear the same garment.

Call it ironic, but it's not the only irony. Gen Z took against fast fashion's environmental costs on the same platforms that sell the clothes – TikTok haul videos next to TikTok exposés. Learning to mend or sew becomes a way to opt out, without opting out of whatever's in vogue. A multinational now teaches high school students how to put in a button, hem, patch a hole, fix a tear. Once such skills used to be passed to granddaughters from grandmothers. That intergenerational estate has now become content. The algorithm has replaced the grandmother, who still has nobody listening to her or learning from her.

Irony is everywhere, the central mode of postmodern life. But for all its paradoxes, learning to sew, repair, embroider, crochet, knit is a hopeful, tactile choice. It at least puts an asterisk on the swipe, scroll, order, discard, replace cycle. And unlike many other countries, this knowledge is still a living inheritance in India. Psychologically, it also hits very differently than our digital addictions. It is slow, quieting, stubbornly physical. Finally, when knowing what to do with the needle is just something cool to do, turns out it's not women's work after all. The boys want in too.

दैनिक भास्कर

Date: 13-08-26

युवा वोटरों को नजरअंदाज करना अब मुश्किल होगा

संपादकीय

भारतीय राजनीति में किसान, महिला, पिछड़ा और दलित वोट बैंक रहे हैं। सम्प्रदाय, जाति और उपजाति भी चुनावों में बड़ी भूमिका निभाते रहे हैं। लेकिन अब अचानक संघ प्रमुख से लेकर पीएम और राहुल गांधी से लेकर विपक्षी दलों के लोगों का युवाओं से मुखातिब होना इस वर्ग की नई भूमिका का उद्घोष है। यूपी सहित सात राज्यों में अगले वर्ष चुनाव हैं, जहां औसतन 22% वोटर्स इस वर्ग के हैं। तभी तो यूपी सरकार ने सभी डीएम और एसपी को आदेश दिया है कि a जिले के इंटरमीडिएट कॉलेजों में प्रमुख समारोहों का आयोजन करें और विद्यार्थियों से संवाद कर उन्हें प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी के बारे में बताएं। सीजेपी ने भी जेन जी के महत्व को बनाए रखने के लिए 12 सदस्यों का एक्शन ग्रुप बनाया है, जो देश भर में अभिभावकों और संरक्षकों से संवाद करके उन्हें अपनी समस्याओं से अवगत कराएगा। देखना होगा कि क्या समय के साथ यह वर्ग अपने वर्तमान गैर- जातिवादी और असाम्प्रदायिक स्वरूप में बना रहता है। या फिर पुराने पहचान-समूहों में विघटित हो जाता है । सर्वहारा क्रांति के मसीहा मार्क्सवादी भी भारत में तब विफल रहे थे, जब मजदूर-किसान गरीबी और शोषण के बावजूद जातिवादी सोच से अपने को अलग नहीं कर पाए थे। बहरहाल जेन- जी ने एकजुटता की नई पहल शुरू की है और सभी दल इसकी धमक महसूस कर रहे हैं। अतीत में भी जेपी मूवमेंट, असम छात्र आंदोलन, आरक्षण-विरोधी आंदोलनों ने भारतीय राजनीति पर दीर्घकालिक असर डाले थे।

Date: 13-08-26

हमारे पास कहने को बहुत कुछ है, पर दुनिया को उन्हें सुनाएं तो

अमिताभ कांत, (नीति आयोग के पूर्व सीईओ और भारत के पूर्व जी-20 शेरपा)

भारत में यूनेस्को की विश्व धरोहर सूची में शामिल 44 सम्पत्तियां हैं और 69 साइट अस्थाई सूची में हैं। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के अधीन 3600 से अधिक केंद्रीय संरक्षित स्मारक हैं तथा राज्य पुरातत्व विभागों और धार्मिक ट्रस्टों के तहत भी बहुत-से स्थल हैं।

इनमें से कई जगहों पर पर्यटक शानदार वास्तुकला या धार्मिक स्थलों को देख तो लेते हैं, लेकिन इनके बारे में उन्हें कम ही जानकारी मिल पाती है। ऐसा इसलिए, क्योंकि उस स्थल की कहानी दूरदराज के किसी म्यूजियम या रिजर्व कलेक्शन में रखी होती है।

हैरिटेज मैनेजमेंट पर नीति आयोग की एक रिपोर्ट में राखीगढ़ी, हस्तिनापुर, धोलावीरा, शिवसागर और आदिचनल्लूर जैसे प्रमुख स्थलों पर साइट म्यूजियमों का नेटवर्क बनाने का प्रस्ताव दिया गया है। हम्पी और सारनाथ में फ्लैगशिप परियोजनाओं की सिफारिश की गई है। संसदीय समितियों ने भी म्यूजियम और पुरातात्विक स्थलों पर इंटिग्रेटेड विजिटर सेंटर बनाने, बेहतर सुविधाएं देने और तकनीक की मदद से कहानी कहने की सुविधा देने की हिमायत की है।

हम सुनिश्चित करें कि हर विश्व धरोहर स्थल के पास एक म्यूजियम या इंटरप्रिटेशन सेंटर हो। उसका आकार-प्रकार संबंधित स्थल के अनुरूप हो सकता है, लेकिन उद्देश्य गंभीर होना चाहिए। ऐसे म्यूजियम में खुदाई से निकली वस्तुएं रखी जाएं, शोध केंद्र हों और स्थानीय समुदायों से जुड़े कार्यक्रम भी आयोजित हों। स्थानीय शिल्प और कला के प्रदर्शन को भी जगह दी जाए तो ये स्मारक ऐसे संस्थान बन सकते हैं, जो रोजगार पैदा करें, स्थानीय गौरव को बढ़ाएं और पर्यटकों को अधिक ठहराव के लिए आकर्षित करें।

भारत में सरकारी परियोजनाओं के अलावा प्राइवेट म्यूजियम और सार्वजनिक-निजी साझेदारियां भी सामने आ रही हैं। किरण नादर म्यूजियम ऑफ आर्ट दिल्ली में एक बड़ा परिसर बना रहा है, जिसे डेविड अडजाये ने डिजाइन किया है।

एक लाख वर्ग मीटर के इस परिसर में गैलरीज के साथ परफॉर्मेंस के लिए स्थान और लर्निंग सेंटर भी हैं। बेंगलुरु के म्यूजियम ऑफ आर्ट एंड फोटोग्राफी ने डिजिटल-फर्स्ट नजरिया अपनाते हुए संरक्षण और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में साझेदारियां की हैं।

मुंबई का डॉ. भाऊ दाजी लाड संग्रहालय दिखाता है कि साझा प्रबंधन से किसी संस्था को कैसे पुनर्जीवित किया जाता है। भुज के स्मृतिवन और पटना के बिहार म्यूजियम जैसे प्रोजेक्ट म्यूजियम को शहर के सामाजिक परिवेश का हिस्सा मानते हैं।

भारत के कंपनी एक्ट के तहत पात्र कंपनियों को अपने औसत शुद्ध लाभ का 2% हिस्सा सीएसआर (कॉर्पोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी) पर खर्च करना जरूरी होता है। सीएसआर विषयों में कला, संस्कृति और हेरिटेज संरक्षण भी शामिल हैं। फिर भी संस्कृति पर सीएसआर फंड का 3% से भी कम हिस्सा खर्च होता है।

इसके लिए सरकारी फंडिंग भी राष्ट्रीय बजट के 1% से भी कम है। जबकि अमेरिका में 2025 में निजी परोपकारी संस्थाओं ने कला, संस्कृति, मानविकी के क्षेत्र में 27 अरब डॉलर से अधिक का योगदान दिया। यूरोपीय कंपनियों ने भी ऐतिहासिक स्थलों के पुनरुद्धार के लिए पैसा दिया।

अगर हम म्यूजियमों में निवेश को सामाजिक खर्च के तौर पर देखें तो सीएसआर बोर्ड और परोपकारी संस्थाएं हम्पी, कोलकाता या दिल्ली के म्यूजियमों को ब्रांडिंग, शिक्षा व पर्यटन आधारित रोजगार के क्षेत्र में साझेदार के तौर पर देख सकेंगी, न कि दान पाने वाली संस्था के तौर पर।

भारत को नेशनल म्यूजियम, साइट म्यूजियम और सिटी म्यूजियमों का ऐसा नेटवर्क बनाने की जरूरत है, जो राजवंशों और पुरावशेषों के साथ ही स्थानों और समुदायों की कहानी भी बताए। दिल्ली के नेशनल म्यूजियम की हड़प्पा गैलरी में मोहनजोदड़ो की नृत्य करती युवती, पशुपति मुहर, राखीगढ़ी से मिला कंकाल और उस वक्त के पुरावशेष एकसाथ रखे गए हैं।

यह बताता है कि कैसे एक फोकस्ड गैलरी शहरी विकास, शिल्प और आस्था के हमारे राष्ट्रीय नैरेटिव को आधार देती है। अगर भारत अपने विश्व धरोहर स्थलों में इस प्रकार के संस्थान बना सकता है, कोलकाता के इंडियन म्यूजियम जैसे पुराने संग्रहालयों का आधुनिकीकरण कर सकता है और रायसीना हिल को एक म्यूजियम क्षेत्र में तब्दील कर सकता है तो उसके पास यकीनन अपनी सभ्यता के कथानक को भावी पीढ़ी तक ले जाने वाला इंफ्रास्ट्रक्चर मौजूद होगा।

अतीत कोई ऐसी कहानी नहीं है, जिसे सीमित दायरे में ही सुनाया जाए। अगर हम अपने संस्थानों को बेहतर तरीके से बनाएं तो हमारा अतीत वो सबसे ताकतवर चीज हो सकती है, जिसे हम दुनिया के सामने पेश कर सकते हैं।

Date: 13-08-26

जेन-जी के बाद जेन-अल्फा के आंदोलन

नवनीत गुर्जर

बड़े दिन हुए! कहना चाहिए सालों बीत गए, कोई आंदोलन इस देश ने नहीं देखा था। कम से कम जेन-अल्फा ने तो नहीं ही देखा था। अब वही जेन-अल्फा आंदोलन पर उतर आया है!

जेन-जी ने जब से जंतर-मंतर और रांची की सड़कों पर अलख जगाई, अल्फा में भी जोश आ गया। जेन-अल्फा वो हैं, जो 2013 से 2024 के दरमियान अवतरित हुए हैं। ये दरअसल छोटे-छोटे स्कूली बच्चे हैं। इनकी मांगें

राजनीतिक नहीं। सामाजिक भी नहीं।

वे सिर्फ अपने स्कूल तक सड़क मांग रहे हैं। या क्लास रूम में पंखों, बेचों की सुविधा मांग रहे हैं। छोटे-छोटे ही सही, आंदोलन कर रहे हैं। शांतिपूर्ण। सौहार्दपूर्ण!

हाल ही में ऐसी कई घटनाएं हो चुकी हैं। फतेहपुर, उत्तरप्रदेश के सरकारी इंटर कॉलेज के बच्चों ने बिजली, पंखे, पानी आदि की व्यवस्था के लिए प्रदर्शन किया और बाकायदा एआई से बनाए गए पोस्टर, प्लेकार्ड का इस्तेमाल भी किया। शिक्षा अधिकारियों को तमाम व्यवस्थाओं के लिए लिखित आश्वासन देना पड़ा।

राजस्थान में छात्रों ने शिक्षकों की कमी, खराब स्कूल भवन और अन्य बुनियादी सुविधाओं के लिए प्रदर्शन किया। उनका नारा था- "पढ़ने के लिए ठीक स्कूल और शिक्षक दो।' इसी तरह बिहार में भी सरकारी स्कूल के बच्चों ने बुनियादी सुविधाओं के लिए प्रदर्शन किया।

महाराष्ट्र में तो स्कूली छात्राओं ने खराब सड़क का वीडियो बनाकर सोशल मीडिया पर डाला और वायरल कर दिया। इसे जेन-अल्फा की डिजिटल तरीके से अपनी मांग रखने की मिसाल माना गया। सबसे ताजा मामला उत्तर प्रदेश के हमीरपुर का है।

यहां चंद्रपुर के स्कूली बच्चे हाथ में तिरंगा लिए पांच किलोमीटर दूर कलेक्टर कार्यालय पहुंच गए। मांग थी स्कूल तक पक्की सड़क बनाई जाए। बच्चों ने लगभग पांच घंटा धरना दिया। कुछ बच्चे तो डीएम कार्यालय में भी घुस गए थे।

इन सभी प्रदर्शनों की खास बात ये रही कि बच्चों ने कहीं भी कोई राजनीतिक नारेबाजी नहीं की। उन्होंने सीधे अपनी मूलभूत मांगों पर फोकस रखा और अपने आंदोलन या प्रदर्शन को वहीं तक सीमित रखा। संकेत साफ है- इनकी लड़ाई फिलहाल किसी केंद्र या राज्य सरकार से नहीं है, लेकिन प्रशासन, खासकर जिम्मेदार अफसरों को सावधान हो जाना चाहिए। अब उनकी मनमानी नहीं चलेगी। ढीलपोल नहीं चलने वाली। सही भी है!

देश के कई राज्यों के कई इलाकों में आज भी सरकारी स्कूलों की हालत जर्जर है। बच्चे कभी पेड़ के नीचे पढ़ने को विवश हैं तो कहीं उन्हीं जर्जर भवनों में, जो कभी भी गिरने को तैयार खड़े हैं। जिम्मेदार अफसर न तो इन स्कूलों को कभी देखने जाते और न ही इनके सुधार या मरम्मत पर ध्यान देते हैं। सड़कों के हाल तो ऐसे हैं कि आप समझ ही नहीं पाते कि ये गड्ढे हैं या सड़क!

अफसरों के इलाकों में बनी-बनाई, चिकनी-चुपड़ी सड़क पर भी महीने-दो महीने में पोता फिर जाता है, जबकि सामान्यजन के इलाकों की कोई कभी सुध ही नहीं लेता। लेकिन अब ऐसा नहीं चलेगा! जेन-जी के बाद अब जेन-अल्फा अपनी ताकत दिखाने पर आमादा हो चुकी है। वो किसी की सुनने वाली नहीं है।

कारण साफ है- उसकी कोई कमजोरी नहीं है। न इनकम टैक्स वालों का डर, न ईडी वालों का भय। चूंकि इन बच्चों का कोई राजनीतिक हित नहीं है, इन्हें किसी पद या कुर्सी की लालसा नहीं है, इसलिए कोई इनमें फूट भी नहीं डाल सकता।

एक अदद नौकरी के लिए वर्षों का संघर्ष और अंत में निराशाजनक लगने वाली इस व्यवस्था में 1990 से पहले जन्मे लोग तो जी लिए। उन्होंने हर तरह की पीड़ा सह भी ली और अपने संघर्षमय जीवन को किसी तरह आत्मसात भी कर लिया।

लेकिन जेन-जी और जेन-अल्फा में वैसा धैर्य नहीं है। वे सहन करने और करते रहने वालों में से नहीं हैं! कुल मिलाकर, यह व्यवस्था को सुधारने का वक्त है। अफसरों के सुधर जाने का वक्त है।

अगर समय रहते ये सब सुधार नहीं हुए तो जेन-अल्फा सबको सुधार देगी!

यह व्यवस्था सुधारने का वक्त 1990 से पहले जन्मे लोगों ने हर तरह की पीड़ा सह भी ली और अपने संघर्षमय जीवन को किसी तरह आत्मसात भी कर लिया, लेकिन जेन-जी और जेन-अल्फा सहन करने और करते रहने वालों में से नहीं हैं। यह व्यवस्था को सुधारने का वक्त है। अगर समय रहते सुधार नहीं हुए तो जेन-अल्फा सबको सुधार देगी।

दैनिक जागरण

Date: 13-08-26

जेपीसी में एफसीआरए

संपादकीय

विदेशी अंशदान विनियमन अधिनियम यानी एफसीआरए में संशोधन वाले विधेयक को संयुक्त संसदीय समिति में भेजने से पक्ष-विपक्ष के बीच सहमति बनने के आसार कम ही हैं, क्योंकि विपक्षी दल इसे वापस लेने की मांग पर अड़े थे। इस कानून में संशोधन पर विपक्ष के साथ अमेरिकी सांसद को भी आपत्ति थी। इसके अतिरिक्त ईसाई संगठन भी इस कानून में संशोधन-परिवर्तन के खिलाफ थे।

उचित यही होता कि सरकार इस विधेयक पर संसद में चर्चा कराने को प्राथमिकता देती और फिर आवश्यक समझती तो उसे जेपीसी को भेजती। बिना किसी चर्चा के इस विधेयक को जेपीसी भेजने से ऐसा लग रहा है कि सरकार किसी दबाव में आ गई। जो भी हो, किसी कानून में संशोधन सरकार का अधिकार है। विपक्ष

प्रस्तावित संशोधनों पर अपनी आपत्ति जता सकता है, लेकिन वह इस पर अड़ नहीं सकता कि संशोधन किया ही न जाए।

आखिर इसके पहले भी एफसीआरए में संशोधन किया गया है और यह इसलिए किया गया था कि कुछ गैर-सरकारी संगठन विदेशी धन के बल पर पर्यावरण संरक्षण की आड़ में विकास विरोधी हरकतें करते हुए पाए गए थे। एफसीआरए यह तय करता है कि एनजीओ, ट्रस्ट आदि विदेश से प्राप्त दान किन उद्देश्यों पर खर्च कर रहा है। एफसीआरए यह भी सुनिश्चित करता है कि विदेशी फंडिंग का इस्तेमाल देश की संप्रभुता, सुरक्षा और आंतरिक शांति के विरुद्ध न होने पाए।

हालांकि एफसीआरए में यह प्रविधान है कि राजनीतिक दल, नेता, उम्मीदवार, जज, सरकारी कर्मचारी आदि विदेशी चंदा प्राप्त नहीं कर सकते, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि कई संस्थाएं यह स्पष्ट करने से इन्कार करती हैं कि उन्होंने विदेश से मिले पैसे किस मद में खर्च किए? ऐसे भी मामले सामने आ चुके हैं कि दान जिस उद्देश्य से लिया गया, उसे खर्च किसी अन्य मकसद के लिए किया गया। इससे भी चिंताजनक यह है कि विदेशी धन पाने वाली कई संस्थाएं राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध काम करती हुई पाई गई हैं।

क्या यह किसी से छिपा है कि कुडनकुलम परमाणु परियोजना के खिलाफ धरना-प्रदर्शन करने वाले संगठन ऐसा ही करते पाए गए थे? यह निष्कर्ष उस संप्रग सरकार का था, जिसका नेतृत्व कांग्रेस कर रही थी। क्या यह विडंबना नहीं कि आज यही कांग्रेस एफसीआरए में संशोधन के खिलाफ है? देश में कार्यरत एनजीओ एक तरह का उद्यम बन गए हैं।

कई एनजीओ संदिग्ध चरित्र वाले हैं और उन पर देश हित विरोधी कार्यों और खासकर विकास विरोधी माहौल बनाने तथा मतांतरण में लिप्त होने के आरोप लगते रहे हैं। इसे देखते हुए एफसीआरए में उपयुक्त संशोधन किए ही जाने चाहिए। इसलिए और भी, क्योंकि संप्रभु देश को यह सुनिश्चित करने का अधिकार है कि विदेशी धन का दुरुपयोग न होने पाए।

Date: 13-08-26

विदेशी पूंजी आकर्षित करने की चुनौती

डॉ. जयंतीलाल भंडारी, (लेखक अर्थशास्त्री हैं)

पिछले दिनों वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने लोकसभा में कराधान एवं अन्य कानून (संशोधन) विधेयक, 2026 पेश किया। इसका मुख्य उद्देश्य भारत को वैश्विक पूंजी और व्यापार के लिए अधिक आकर्षक एवं भरोसेमंद गंतव्य बनाने के साथ ही आफशोर इन्वेस्टमेंट फंड्स और फंड प्रबंधकों के लिए नियमों को सरल बनाना है।

देखा जाए तो यह भारत में विदेशी निवेश को आकर्षित करने, कर व्यवस्था में स्पष्टता लाने और घरेलू विनिर्माण को सुदृढ़ बनाने के परिप्रेक्ष्य में एक अत्यंत अहम कदम है। विदेशी पूंजी के प्रवाह में वृद्धि से देश की आर्थिक स्थिरता मजबूत होगी और बाहरी आर्थिक झटकों को सहने की क्षमता बढ़ेगी।

भारत विदेशी पूंजी आकर्षित करने की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहा है। हाल में लागू आरबीआइ की नई रियायती स्वैप सुविधा को वैश्विक स्तर पर व्यापक समर्थन मिला है। इसका मुख्य उद्देश्य देश के विदेशी मुद्रा भंडार को बढ़ाना और भुगतान संतुलन को मजबूत करना है। इस योजना के तहत बैंकों को जिन तीन प्रमुख माध्यमों से विदेशी मुद्रा जुटाने में मदद मिली है, उनमें प्रमुख रूप से विदेश से ली जाने वाली जमा योजनाएं, विदेशी मुद्रा ऋण और बाहरी वाणिज्यिक उधार शामिल हैं।

इस समय भारतीय शेयर बाजार में विदेशी संस्थागत निवेशकों की वापसी के भी स्पष्ट संकेत देखने को मिल रहे हैं। लंबे समय तक बिकवाली के बाद विदेशी निवेशक एक बार फिर भारत जैसे स्थिर और सुरक्षित बाजारों को प्राथमिकता दे रहे हैं। इसके प्रमुख कारणों में रुपये की स्थिरता, कंपनियों की बेहतर आय, भू-राजनीतिक चिंताओं में कमी और दीर्घकालिक निवेश के बेहतरीन अवसर शामिल हैं। भारत का विदेशी मुद्रा भंडार बढ़कर 682 अरब डालर से अधिक के उच्च स्तर पर पहुंच गया है। इससे विदेशी संस्थागत निवेशकों का विश्वास बढ़ा है, वैश्विक ऋण भुगतान एवं प्रबंधन आसान हुआ है और घरेलू बाजार में महंगाई को नियंत्रित रखना संभव हुआ है।

वर्ष 1991 के आर्थिक संकट के बाद आर्थिक सुधारों का नया दौर शुरू किया गया। तब से अब तक विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए निरंतर कई ठोस कदम उठाए गए हैं। बीमा, दूरसंचार और खुदरा जैसे प्रमुख क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआइ) की सीमा बढ़ाकर 100 प्रतिशत तक कर दी गई है। रक्षा क्षेत्र में भी कुछ शर्तों और नियमों के साथ 100 प्रतिशत एफडीआइ की अनुमति दी गई है। अधिकांश क्षेत्रों में पूर्व-सरकारी अनुमति के बिना (स्वचालित मार्ग से) निवेश करने की छूट प्रदान की गई है। पुराने और कठोर 'फेरा' कानून को समाप्त कर लचीला 'फेमा' लागू किया गया है, जिससे विदेशी मुद्रा का प्रवाह और लेनदेन आसान हो गया है।

देश को वैश्विक विनिर्माण केंद्र के रूप में स्थापित करने और विदेशी कंपनियों को आकर्षित करने के लिए 'मेक इन इंडिया' अभियान शुरू किया गया है। निवेशकों को कर में छूट, सरल नियम और आधुनिक बुनियादी ढांचा उपलब्ध कराने के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्रों (एसईजेड) का विकास किया गया है। प्रमुख विनिर्माण क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने वाली कंपनियों को वित्तीय प्रोत्साहन देने के लिए 'उत्पादन-लिंक्ड प्रोत्साहन' (पीएलआइ) जैसी व्यवस्थाएं की गई हैं। व्यापार को गति देने के लिए चालू खाते पर रुपये को पूरी तरह से परिवर्तनीय बनाया गया है तथा भारतीय शेयर बाजार में विदेशी संस्थागत और पोर्टफोलियो निवेशकों (एफपीआइ) के लिए नियमों को सरल किया गया है।

विभिन्न बहुआयामी प्रयासों के बावजूद भारत में टिकाऊ विदेशी पूंजी आकर्षित करने के लिए अभी भी कई ठोस सुधारों की आवश्यकता है। केवल बड़े घरेलू बाजार और उच्च विकास दर के भरोसे रहना पर्याप्त नहीं होगा। इसके लिए देश के नियामक ढांचे, कर प्रणाली और कानूनी तंत्र में व्यापक बदलाव अनिवार्य हैं। दीर्घकालिक निवेश के लिए स्थिर नीतियां पहली प्राथमिक शर्त हैं। कर नियमों, सीमा शुल्क और क्षेत्र-विशेष के प्रविधानों में अचानक होने वाले परिवर्तनों से निवेशक दूर भागते हैं। केंद्र और राज्य स्तर पर विभिन्न स्वीकृतियों, अनुमतियों और जटिल नियमों का बोझ अभी भी बहुत अधिक है। इसके अतिरिक्त, न्यायालयों में विवाद समाधान की धीमी गति और अनुबंधों को लागू करने में होने वाली देरी विदेशी पूंजी के प्रवाह में बड़ी बाधा बनती है।

निवेशकों का विश्वास बनाए रखने के लिए सरकार द्वारा राजकोषीय घाटे का नियंत्रण और मुद्रास्फीति को संतुलित सीमा में रखना जरूरी है। भारतीय मुद्रा के मूल्य में अत्यधिक उतार-चढ़ाव निवेशकों के रिटर्न को नुकसान पहुंचाता है, इसलिए विनिमय दर में स्थिरता बनाए रखना आवश्यक है। यद्यपि भारत का शेयर बाजार मजबूत है,पर कारपोरेट ऋण बाजार अभी भी सीमित है। इसे अधिक विस्तृत और तरल बनाना पोर्टफोलियो निवेशकों को आकर्षित करने के लिए अनिवार्य है। पूंजी की आवाजाही पर लगे प्रतिबंधों को कम करके इसे अधिक लचीला बनाना होगा। चीन पर अपनी निर्भरता कम करने (चाइना प्लस वन) की इच्छुक वैश्विक कंपनियों को आकर्षित करने के लिए केवल उत्पादन-आधारित प्रोत्साहन योजनाएं ही पर्याप्त नहीं हैं। इसके लिए आधुनिक बुनियादी ढांचे, परिवहन लागत में कमी और कुशल कार्यबल का एक एकीकृत ढांचा तैयार करना होगा।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 13-08-26

विदेशी अंशदान

संपादकीय

एफसीआरए अर्थात विदेशी अंशदान (विनियमन) संशोधन विधेयक के पारित न होने से ज्यादा अफसोस की बात यह है कि इस पर संसद में चर्चा नहीं हो पाई। चर्चा होती, तो देश के आम लोगों को भी इस विधेयक के प्रावधानों के बारे में बहुत कुछ पता चलता। समर्थन और विरोध में तर्क-तथ्य सुनकर लोगों का सामान्य ज्ञान बढ़ता, लेकिन यह मौका हाथ से जाता रहा। सदन में हंगामे से परेशान केंद्र सरकार ने विधेयक को लोकसभा के 21 सदस्यों और राज्यसभा के 10 सदस्यों वाली संयुक्त संसदीय समिति (जेपीसी) के पास भेज दिया है। जहां सत्ता पक्ष इस विधेयक के पक्ष में था, वहीं बुधवार को पूरा विपक्ष इस विधेयक के खिलाफ खड़ा हो गया। विधेयक को जेपीसी के पास भेजने की प्रक्रिया के दौरान भी विपक्षी नेता नारेबाजी करते रहे। केंद्रीय गृह मंत्री

अमित शाह के नाम से सूचीबद्ध इस संशोधन विधेयक को केंद्रीय गृह राज्य मंत्री नित्यानंद राय ने पेश किया। जहां विपक्षी नेताओं का आरोप है कि विधेयक अल्पसंख्यकों को नुकसान पहुंचाएगा। वहीं, संसदीय कार्य मंत्री किरेन रिजिजू ने बचाव करते हुए कहा कि विपक्षी नेता विधेयक में कोई भी ऐसा प्रावधान बताएं, जो अल्पसंख्यक विरोधी है।

वैसे मानसून सत्र में सदन में जो माहौल रहा है, उसकी केवल निंदा ही हो सकती है। देश का बहुमूल्य समय और संसाधन बर्बाद किया गया है। विपक्षी नेता पहले इस विधेयक को जेपीसी में भेजने की बात कर रहे थे, लेकिन बाद में विधेयक को वापस लेने की मांग करने लगे। सत्ता पक्ष में भी शायद कमी रह गई, विपक्षी नेताओं को विश्वास में नहीं लिया गया। आज के समय में अनेक कारणों से सांसदों, नेताओं के बीच परस्पर विश्वास हिल चुका है। विपक्षी नेता नरमी बरतने को तैयार नहीं हैं। कायदा तो यही है कि इस विधेयक पर कुछ चर्चा होती और उसके बाद ही इसे जेपीसी के पास भेजा जाता। कहा जाता है, जहां राजनीति ज्यादा हावी हो जाए, वहां समन्वय की राह कठिन हो जाती है। यह अति स्वार्थ की राजनीति को काबू में रखने का समय है। देशहित सबको सुनिश्चित करना चाहिए। संभावनाएं बरकरार हैं। संसद में हंगामे को देखकर यह नहीं सोचना चाहिए कि संवाद या समन्वय की स्थिति पूरी तरह से चौपट हो गई है। सरकार ने विधेयक को जेपीसी के पास भेजने का फैसला विचार- विमर्श के बाद ही किया है। मिसाल के लिए, द्रमुक सांसद पी विल्सन के नेतृत्व में प्रतिनिधिमंडल ने केंद्रीय गृह मंत्री से मुलाकात की थी और केंद्र सरकार से विधेयक वापस लेने या इसकी विस्तृत जांच के लिए संसदीय समिति के पास भेजने का आग्रह किया था। इसके अलावा, मिजोरम के मुख्यमंत्री लालदुहोमा ने भी प्रस्तावित संशोधनों पर चिंता व्यक्त की थी। अब आगे जेपीसी में विस्तार से विचार-विनिमय की जरूरत है।

इस विधेयक के एक प्रस्ताव पर अनेक अल्पसंख्यक समूहों की चिंता को पूरी संवेदना के साथ समझने की जरूरत है। विधेयक के प्रमुख प्रस्तावों में से एक यह भी है कि एक नामित प्राधिकरण का गठन किया जाएगा, जो किसी संगठन के एफसीआरए पंजीकरण की अवधि समाप्त होने या रद्द होने की स्थिति में विदेशी अंशदान और ऐसी निधियों से अर्जित संपत्तियों का प्रभार संभाल लेगा। यहां उन अल्पसंख्यक गैर- सरकारी संगठनों, समूहों को ज्यादा चिंता सता रही है, जिन्हें विदेश से आर्थिक सहयोग मिलता है। गैर-सरकारी संगठनों के पास बाहर से आ रहे धन पर निगाह रखने में कोई बुराई नहीं है। हालांकि, नई व्यवस्था बनाने के लिए सरकार को समन्वय और संवाद से काम लेना पड़ेगा।

Date: 13-08-26

यूपीआई भुगतान को मुफ्त रहने दीजिए

अजीत रानाडे, (अर्थशास्त्री)

यूपीआई (यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस) आज भारत की सबसे सफल आर्थिक बुनियादी सुविधाओं में से एक है। जुलाई में इसके जरिये लगभग 24 अरब लेन-देन हुए, जिनमें करीब 30 ट्रिलियन, यानी 30 लाख करोड़ रुपये के भुगतान हुए। इतना व्यापक और सर्वसुलभ होने के कारण यूपीआई सिर्फ भुगतान साधन नहीं, बल्कि देश की डिजिटल जन सुविधा (डीपीआई) का जरूरी हिस्सा बन गई है।

इसलिए, ग्राहकों द्वारा क्रेडिट-डेबिट कार्ड या डिजिटल माध्यम से किए गए भुगतान पर दुकानदारों से शुल्क (एमडीआर) वसूलने संबंधी विधायी संशोधन पर गौर किए जाने की जरूरत है। अब तक यूपीआई और रूपे पेमेंट को एमडीआर से मुफ्त रखा गया था, पर अब शुल्क कार्यकारी फैसलों के आधार पर निर्धारित किए जाएंगे। हालांकि, वित्त मंत्री ने भरोसा दिया है कि एमडीआर सिर्फ व्यवसायियों पर लागू होगा और बुनियादी ढांचे, नवाचार और सुरक्षा में निवेश के लिए राशि जुटाने के मकसद से ऐसा करना जरूरी था।

असल में, बैंक, भुगतान सेवा मुहैया कराने वाले एप और यूपीआई संचालित करने वाला भारतीय राष्ट्रीय भुगतान निगम (एनपीसीआई) सर्वर, साइबर सुरक्षा, धोखाधड़ी का पता लगाने, विवाद सुलझाने और मामलों के निपटारे पर पैसे खर्च करते हैं। अनुमान है, इस मद में इस उद्योग को सालाना करीब 20,000 करोड़ रुपये खर्च करने पड़ते हैं और सरकार से होने वाली भरपायी बहुत ही कम है। यूपीआई की लागत को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता और बैंकों या भुगतान कंपनियों से यह उम्मीद नहीं की जानी चाहिए कि वे हमेशा यूपीआई को सब्सिडी देती रहेंगी। फिर सवाल उठता है कि किसे यह भुगतान करना चाहिए? लागत और कीमत के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर है। यहां गौर करने वाली बात यह भी है कि कई सार्वजनिक सुविधाएं महंगी हैं, लेकिन हम हरेक सुविधा पर टोल नहीं वसूलते। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि ये कल्याणकारी होते हैं। यूपीआई में भी जन हितकारी खूबियां और शक्तिशाली नेटवर्क प्रभाव है। जैसे-जैसे ज्यादा से ज्यादा लोग और व्यापारी इसका इस्तेमाल करते हैं, इसका महत्व बढ़ता जाता है।

यूपीआई के तेजी से प्रसार का एक अहम कारण एमडीआर का शून्य होना रहा है। इसने डिजिटल भुगतान को नगद जैसा बना दिया। खरीदारों और दुकानदारों के बीच होने वाले 85 प्रतिशत से ज्यादा लेन-देन छोटी रकम के होते हैं। चाय के 15 रुपये देते हुए या ऑटो ड्राइवर को 150 रुपये का भुगतान करते समय कोई भी पक्ष इस लेन-देन पर लगने वाले शुल्क के बारे में नहीं सोचता है। फिर तथ्य यह भी है कि छोटे दुकानदार बहुत कम लाभ पर काम करते हैं। यह सोच कि एमडीआर का भुगतान दुकानदार करेगा, एक बड़ी भूल है। इसे दुकानदार कीमतें बढ़ाकर ग्राहकों पर डाल सकता है। किसी भी शुल्क का आर्थिक बोझ जरूरी नहीं कि उसी व्यक्ति पर पड़े, जिस पर वह लगाया गया है।

भारत छोटे लेन-देन पर लगने वाले शुल्क के अनुभव से अछूता नहीं है। साल 2005 में बैंकिंग नगदी लेन-देन पर 0.1 प्रतिशत शुल्क लगाए जाने और अप्रैल 2009 हटाने के उदाहरण को याद कीजिए। भले ही दोनों मामले बिल्कुल एक जैसे न हों, लेकिन इससे मिलने वाली सीख काम की है। बहुत कम लागत मामूली लग सकती है, लेकिन बार-बार लगाए जाने पर यह लोगों की आर्थिकी को प्रभावित करती है। यूपीआई को इसलिए मुफ्त रखा गया था, ताकि लोग नगद के बजाय डिजिटल भुगतान के अभ्यस्त हों ।

यूपीआई से भुगतान से सिर्फ सुगमता के फायदे नहीं हैं, इसके कारण कस्बों व ग्रामीण इलाकों में टेलीकॉम सेवाओं को बेहतर बनाने का दबाव बनता है, क्योंकि कमजोर मोबाइल सिग्नल भुगतान में बाधक होता है। इसी तरह, यह डिजिटल साक्षरता को भी बढ़ावा देता है। जो व्यक्ति क्यूआर कोड स्कैन करना, पाने वाले की पहचान करना, पेमेंट ऑथेंटिकेट करना और यह देखना सीख जाता है कि पैसे आए या नहीं, वह डिजिटल आर्थिकी के साथ ज्यादा सहज हो जाता है। यह साक्षरता सरकारी सेवाओं का लाभ लेने में भी काम आएगी। अब एक अन्य बुनियादी डिजिटल सुविधा आधार पर 0.1 प्रतिशत शुल्क लगाए जाने और अप्रैल 2009 हटाने के उदाहरण को याद कीजिए। भले ही दोनों मामले बिल्कुल एक जैसे न हों, लेकिन इससे मिलने वाली सीख काम की है। बहुत कम लागत मामूली लग सकती है, लेकिन बार-बार लगाए जाने पर यह लोगों की आर्थिकी को प्रभावित करती है। यूपीआई को इसलिए मुफ्त रखा गया था, ताकि लोग नगद के बजाय डिजिटल भुगतान के अभ्यस्त हों ।

यूपीआई से भुगतान से सिर्फ सुगमता के फायदे नहीं हैं, इसके कारण कस्बों व ग्रामीण इलाकों में टेलीकॉम सेवाओं को बेहतर बनाने का दबाव बनता है, क्योंकि कमजोर मोबाइल सिग्नल भुगतान में बाधक होता है। इसी तरह, यह डिजिटल साक्षरता को भी बढ़ावा देता है। जो व्यक्ति क्यूआर कोड स्कैन करना, पाने वाले की पहचान करना, पेमेंट ऑथेंटिकेट करना और यह देखना सीख जाता है कि पैसे आए या नहीं, वह डिजिटल आर्थिकी के साथ ज्यादा सहज हो जाता है। यह साक्षरता सरकारी सेवाओं का लाभ लेने में भी काम आएगी।

अब एक अन्य बुनियादी डिजिटल सुविधा आधार से इसकी तुलना करके देखिए । आधार से पहचान की पुष्टि करना आसान है, यह हर जगह उपलब्ध और मुफ्त है । आधार के पुष्टिकरण पर कहीं कोई शुल्क नहीं लगत है। यूपीआई के मामले में भी यही रास्ता अपनाना चाहिए दोनों का सामाजिक फायदा उनकी व्यापक उपलब्धत

और आसान इस्तेमाल में है। यूपीआई का विकल्प नगदं होगा, जिसके लिए नोटों को छापना, एक जगह से दूसरी जगह ले जाना, छांटना, स्टोर करना, सुरक्षा देना और दोबारा भरना काफी खर्चीला है। इसके लिए बैंकों क बड़ी संख्या में शाखाएं खोलनी पड़ती हैं, एटीएम और कर्मचारी रखने पड़ते हैं। दूसरी ओर, डिजिटल भुगतान से कारोबार सुगम होते हैं और कर नियमों के पालन के लिए लेन-देन का रिकॉर्ड भी बेहतर होता है।

यूपीआई पर सालाना होने वाली 20,000 करोड़ रुपये के खर्च की भरपायी के कई तरीके हैं। भारतीय रिजर्व बैंक ने 2025-26 में केंद्र सरकार को 2.86 लाख करोड़ रुपये का डिविडेंड दिया था। यूपीआई की लागत उस रकम का सिर्फ सात प्रतिशत थी। जब डिजिटल सुविधाओं से बड़े सामाजिक फायदे मिलते हैं, तो उसके इस्तेमाल की लागत नहीं वसूली जानी चाहिए। तो क्य अंतरराष्ट्रीय दबाव में यूपीआई को मुफ्त नहीं रहने दिय जा रहा है ? 'यूएस ट्रेड रिप्रेजेंटेटिव' की 2026 क रिपोर्ट में शिकायत की गई है कि भारत की नीतियां विदेशी भुगतान सेवा देने वालों के बजाय यूपी आई और रूपे के बढ़ावा देने वाली हैं। उन्होंने 'ग्लोबल कार्ड नेटवर्क' के व्यवसाय शुल्क मॉडल को बाधित किया है। हालांकि गूगल पे और बॉलमार्ट के नियंत्रण वाली फोन पे SC फीसदी से ज्यादा यूपीआई से लेन-देन करती हैं। इसलिए विदेशी भागीदारी न होने की बात सही नहीं है।

वैश्विक डिजिटल सार्वजनिक सुविधा, यानी डीपीआई में भारत के जो सबसे महत्वपूर्ण योगदान हैं, उनमें यूपीआई अहम है। कई देश 'इंडिया स्टैक' क अध्ययन कर रहे हैं, क्योंकि भारत ने दिखा दिया है कि पहचान, बैंकिंग और बैंक, मोबाइल वॉलेट व पेमेंट एप्स वइनके बीच के लेन-देन बड़े पैमाने पर काम कर सकते हैं। लेन-देन में आने वाली रुकावटों को कम करने से इसमें सफलता मिली है। लागत से कहीं ज्यादा इसके फायदे हैं, जैसे वित्तीय समावेशन, डिजिटल साक्षरता_ बेहतर संपर्क और आर्थिक दक्षता। इसलिए, यूपीआई को एक और वाणिज्यिक भुगतान सेवा बनाने के बजाय जन सुविधा बने रहने दें।